न्यायिक मानक एवं जवाबदेही विधेयक

अजीत प्रकाश शाह

विगत दो दशकों में भारत ने असाधारण प्रगति की है। परंतु इसके साथ ही इस प्रगति का कुछ धुंधला पक्ष भी है और वह है हमारी लोकतांत्रिक संस्थाओं के प्रति हमारा सिरफिरापन और उनके भविष्य के प्रति निराशावादी दृष्टिकोण। न्यायपालिका जिसे अब तक लोकतंत्र का सबसे मजबूत स्तंभ माना जाता था उसमें कुछ समस्याएं सामने आने लगी हैं। हाल ही में वरिष्ठ न्यायालयों (उच्च एवं उच्चतम न्यायालय) के न्यायाधीशों के व्यवहारों के प्रति गंभीर आशंकाएं व्यक्त की जाने लगी हैं और उनकी कार्यप्रणाली की आलोचना हुई है। भारतीय न्यायपालिका में जवाबदेही की मांग आज से अधिक तीव्र कभी नहीं हुई। इस परिप्रेक्ष्य में संसद द्वारा प्रस्तावित "न्यायिक मानक एवं जवाबदेही विधेयक 2010" को देखा जाना चाहिए।

यह विधेयक हाल ही की घटनाओं के प्रति जल्दबाजी में हुई झकझोड़ने वाली प्रतिक्रिया प्रतीत होता है और इसमें न्यायिक स्वतंत्रता को आघात पहुंचने की संभावनाएं हैं। इसमें

शिकायत की एक नई प्रक्रिया प्रस्तावित है, जिसके अंतर्गत कोई भी व्यक्ति किसी भी न्यायाधीश के विरुद्ध उसके वरीय न्यायालय में शिकायत कर सकता है। ऐसी शिकायत दर्ज होने पर न्यायिक सतर्कता समिति (जिसका कि विधेयक में प्रावधान है) शिकायत की जांच करने के बाद या तो शिकायत को खारिज कर सकती है या संसद को अनुशंसा कर सकती है कि संबंधित न्यायाधीश को बरखास्त कर दिया जाय, उसे चेतावनी दी जाय, उससे न्यायिक कार्य हटा लिया जाय या उसे स्वेच्छापूर्ण सेवानिवृत्ति के लिए कहा जाय।

न्यायिक मानकों के मुद्दे को संविधान की धारा 124 (4) के संदर्भ में देखा जाना चाहिए जिसमें किसी न्यायाधीश के विरुद्ध दुर्व्यवहार या अयोग्यता का मामला सिद्ध होने पर महाअभियोग चलाने की प्रक्रिया का प्रावधान है। धारा 124 (5) में महाअभियोग के प्रस्ताव प्रस्तुत करने की प्रक्रिया व दुर्व्यवहार या अयोग्यता की जांच की प्रक्रिया निर्धारित करने का अधिकार केवल संसद को ही दिया गया है।

चतुराईपूर्ण छद्म विधेयक

इस विधेयक को चतुराई से ऐसा प्रदर्शित किया गया है कि यह धारा 124 (5) के अंतर्गत लाया जा सकता है। यह संवैधानिक संरक्षणों का खुला उल्लंघन है और यह दवा मर्ज से भी खराब है। धारा 124 (5) संसद को किसी अन्य मंच को महाअभियोग की अनुशंसा करने का अधिकार देने के लिए अधिकृत नहीं करती या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा शिकायत करने के लिए या किसी न्यायाधीश को मामूली सजा देने के लिए अधिकृत नहीं करती। जो कार्य लोकसभा के सौ या अधिक सदस्यों या राज्य सभा के पचास या अधिक सदस्यों द्वारा ही किया जा सकता है (महाअभियोग चलाने की कार्यवाही का प्रस्ताव रखना) वह अब केवल एक व्यक्ति द्वारा किया जाना संभव होगा।

यह सत्य है कि अमरीका व कैनडा जैसे अन्य देशों में न्यायिक आयोग होते हैं पर उनकी पहुंच सर्वोच्च न्यायालय तक नहीं होती। इसके अलावा, दूसरे देशों के ढांचों को अपने यहां बिना अपने देश की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अपने देश में रोपित करना सही नहीं होगा और ऐसा करने से भय है कि हमारे देश में जो संवैधानिक संतुलन बना हुआ है वह बिगड़ जाएगा।

नीचे इस विधेयक की कुछ अन्य कमियां रेखांकित की जा रही हैं।

दुर्व्यवहार की परिभाषा

इस विधेयक में दुर्व्यवहार की बहुत ही जकड़ी हुई परिभाषा दी गई है, पर इस प्रकार की परिभाषा से इस संप्रत्यय का लचीलापन नष्ट हो गया है और यह अति समावेशी एवं कम समावेशी हो गया है। अति समावेशी इसलिए कि न्यायिक मानकों का थोड़ा सा उल्लंघन भी, जैसे अपनी संपत्ति की घोषणा करने में विलंब, भी दुर्व्यवहार की श्रेणी में आ सकता है और कम समावेशी इसलिए कि इसकी परिभाषा के बाहर का दुर्व्यवहार इसके दायरे के बाहर हो जाएगा। संविधान निर्माताओं ने दुर्व्यवहार को परिभाषित न करने की सावधानी बरती थी। ऐसा करने के पीछे मान्यता यह थी कि यदि हटाने का अधिकार उच्च संवैधानिक प्राधिकरण को दिया गया हो तो वे ही यह तय करने के लिए उपयुक्त स्थिति में होंगे कि दुर्व्यवहार कब घटित हुआ है।

न्यायिक मानकों के बारे में संवैधानिक प्रावधान

इस विधेयक में न्यायिक मानकों की एक सूची दी गई है, जिनकी अनुपालना सभी न्यायाधीशों द्वारा की जाने की अपेक्षा है। 18 में से 16 मानक सर्वोच्च न्यायालय की 7 मई 1997 को हुई पूर्ण न्यायालयी बैठक में 41 दिन "न्यायिक जीवन के मूल्यों का पुनर्प्रतिपादन" से लिए गए हैं। इसके बावजूद न्यायिक मानकों को संवैधानिक प्रावधान में लाना न्यायिक स्वतंत्रता पर कुठाराघात होगा।

उच्च न्यायालय के सामने आने वाले आज के अधिकांश

मुकदमे लोक प्रकृति के होते हैं और इनमें एक पक्ष में सरकार होती है। बहुत से कानून असंवैधानिक होने के कारण हटा दिए जाते हैं। ऐसी स्थिति में विधायिका को न्यायिक मानक निर्धारित करने के लिए अधिकृत करने से जिनकी अनुपालना सभी न्यायाधीशों को करनी होगी, न्यायिक प्रक्रिया की निष्पक्षता पर आघात होगा।

शिकायत दर्ज करने की योजना

इस विधेयक में यह प्रावधान है कि कोई भी व्यक्ति एक निश्चित प्रारूप में शिकायत दर्ज करा सकता है। इसके बाद न्यायिक निगरानी समिति पोस्ट ऑफिस का करते हुए इस शिकायत को एक छानबीन समिति को भेजेगी। इससे कई शिकायतें दर्ज होने लगेंगी। यद्यपि विधेयक में धारा 53 के अंतर्गत झूठी शिकायतें दर्ज कराने पर पाबंदी है। पर इससे शिकायतों पर अंकुश लगने की संभावना कम है और क्योंकि प्रत्येक शिकायत की छानबीन "छानबीन समिति" द्वारा की जाएगी इससे बहुत अधिक समय की बर्बादी होगी।

धारा 18 में प्रावधान है कि निगरानी समिति में 5 व्यक्ति होंगे। दो वर्तमान एवं एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश, एक गणमान्य व्यक्ति जो कि नामांकित किया जाएगा व भारत के एटार्नी जनरल निगरानी समिति में एटार्नी जनरल का होना संदेहास्पद है। एटार्नी जनरल को सरकार की पैरवी करने के लिए न्यायालयों में उपस्थित होना पड़ता है। कभी ऐसी परिस्थिति भी आ सकती है कि उसे उस न्यायाधीश के न्यायालय में पेश होना पड़े जिसके विरुद्ध शिकायत दर्ज हुई है और वह उस समिति में भी है जो इस शिकायत को देख रही है, ऐसी स्थिति में द्विविधा की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

छानबीन समिति में तीन सदस्य होंगे उनमें से दो उसी न्यायालय के कार्यरत न्यायाधीश होंगे जिस न्यायालय के न्यायाधीश के विरुद्ध शिकायत दर्ज हुई है। क्योंकि ये दोनों न्यायाधीश उस न्यायाधीश के साथी हैं जिसके विरुद्ध शिकायत दर्ज हुई है अतः इनके निर्णय में सकारात्मक या नकारात्मक पूर्वाग्रह हो सकते हैं। जिस व्यक्ति के साथ वे रोज काम करते हैं पीठ में बैठते हैं उसके बारे में निष्पक्ष निर्णय की उनसे उम्मीद करना कठिन है।

इसके अतिरिक्त शिकायत की जांच के लिए जो समिति बनेगी उसके गठन के बारे में स्पष्ट परिभाषा नहीं की गई है। ऐसे में संभव है कि जांच समिति में एक कम अनुभवी कम जानकार व्यक्ति एक वरिष्ठ न्यायालय के न्यायाधीश के मामले की जांच के लिए नियुक्त हो जाय।

अल्प दंड

'अल्प दंड' का विचार व्यावहारिक नहीं है। इससे न्यायिक गरिमा के कम होने की संभावना है। यदि कार्यरत न्यायाधीशों को चेतावनी दी जाय या सलाहकारी दी जाय और जनता के बीच निंदित किया जाय और फिर भी वे पीठासीन होकर न्यायालयी फैसले करते रहें तो पूरी व्यवस्था की साख पर प्रश्न चिह्न लगेगा।

गोपनीयता का वातावरण

धारा 43 के अंतर्गत इस क्षेत्र में सूचना के अधिकार के दायरे को समाप्त कर दिया गया है। इससे एक पूरा गोपनीयता का वातावरण पैदा हो जायगा। जो आज की स्थिति से बदतर होगा और ऐसे परिवर्तन का कोई औचित्य नजर नहीं आता।

निष्कर्ष

विधायिका को न्यायपालिका की स्वतंत्रता एवं निर्भीकता पर कुठाराघात करने की इजाजत नहीं है। वरिष्ठ न्यायालय के न्यायाधीश के साथ एक सरकारी मुलाजिम की तरह से बर्ताव नहीं किया जा सकता। इस विधेयक में सुधार की गुंजाइश नहीं है अतः इसे पूरी तरह से अस्वीकृत किया जाना चाहिए। चूंकि न्यायिक व्यवस्था में आधे वादकारियों को तो वाद हारना ही होता है, और अधिकांश शिकायतें आधारहीन होती हैं व असंतुष्ट व्यक्तियों द्वारा दर्ज की गई होती हैं, इसलिए यदि

यह विधेयक लागू कर दिया जाता है तो न्यायपालिका के अंत का प्रारंभ हो जाएगा।

वर्तमान न्यायपालिका व्यवस्था में किसी भी परिवर्तन की मांग को तार्किक आधार पर एवं किन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति को ध्यान में रखकर पूरा किया जाना चाहिए। पहला परिवर्तन का क्षेत्र न्यायिक नियुक्तियों की प्रक्रिया का हो सकता है। वर्तमान प्रक्रिया के अंतर्गत जहां वरिष्ठ न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्तियां अघोषित आधार पर एवं अनजानी परिस्थितियों में की जाती हैं, लोकतांत्रिक परिपाटी की कमी दर्शाता है। न्यायपालिका की वैधता जन समर्थन के आधार पर बनती है जो बिना पारदर्शितापूर्ण एवं खुली चयनप्रक्रिया के बिना संभव नहीं है।

निर्देशन सिद्धांत सदैव यह होना चाहिए : जवाब देही है और होनी चाहिए, पर इसे न्यायपालिका की स्वतंत्रता एवं निष्पक्षता को ध्यान में रखकर साकार होना चाहिए। अंततोगत्वा दो प्रतिस्पर्धी सिद्धांतों के बीच संतुलन स्थापित कर अपने संवैधानिक ढांचे के अनुकूल किया जाना चाहिए व पूर्णतः भारतीय होना चाहिए। भारत के नागरिक को इससे कम की अपेक्षा नहीं है।

अनुवाद : ए.पी. फाटक

